राज्य परिशिष्ट 12

[रोमियों के नाम पत्र]
बाइबल में पाई जाने वाली व्यवस्था

बाइबल में "व्यवस्था" (इब्रानी : तोरह, ग्रीक : नोमोस) शब्द के कई अर्थ हैं।

रोमियों के पत्र को समझने के लिए, हमें "व्यवस्था" शब्द के विभिन्न अर्थों को अलग करने की ज़रूरत है।

---

1 उद्धार के लिए परमेश्वर की परम अपेक्षा और दण्ड की आज्ञा के सभी मानकों के रूप में व्यवस्था।

(1) **परमेश्वर की धार्मिक अपेक्षा के प्रकाशन के रूप में व्यवस्था।**

बाइबल का परमेश्वर परम पवित्र (पाप से अलग) है और इसलिए वह चाहता है कि सभी लोगों को भी पवित्र और धर्मी (जो सही है उसके लिए समर्पित) होना चाहिए । निम्नलिखित बाइबल के पदों में, "व्यवस्था" मुख्य रूप से न्यायोचित (उद्धार) बातों में परमेश्वर की अपेक्षा को सन्दर्भित करता है। एक पूर्ण अर्थ में, व्यवस्था परमेश्वर के उद्धार, जीवनयापन के लिए कर्तव्य का पूर्ण नियम और निर्णय तथा दण्ड की आज्ञा के रूप में परमेश्वर के पूर्ण मानक है।

क्योंकि परमेश्वर परम पवित्र और धर्मी है, वह यह अपेक्षा करता और चाहता है कि :

- उसके सामने सभी लोग *व्यवस्था की अवस्था (स्थिति) में पूरी रीति से पवित्र (100%) और धर्मी बने रहें।* "इसलिये चाहिये कि तुम सिद्ध बनो, जैसा तुम्हारा स्वर्गीय पिता सिद्ध है (मत्ती 5:48)।
- उसके सामने सभी लोग वास्तव *में पूर्ण (100%) पवित्र और धार्मिक जीवन व्यतीत करें।* "पर जैसा तुम्हारा बुलाने वाला पवित्र है, वैसे ही तुम भी अपने सारे चाल-चलन में पवित्र बनो। क्योंकि लिखा है, कि पवित्र बनो, क्योंकि मैं पवित्र हूँ" (1 पतरस 1:15-16)।
- सभी *पापों का पूर्ण (100%) न्याय हो और उसका दण्ड मिले।* "क्योंकि परमेश्वर सब कामों और सब गुप्त बातों का, चाहे वे भली हों या बुरी, न्याय करेगा" (सभोपदेशक 12:14)।

पवित्र परमेश्वर इन सभी सिद्ध बातों के अलावा और किसी बात की अपेक्षा नहीं करता। हर प्रकार का "पाप" परमेश्वर के उद्देश्य को पूरा नहीं होने देता। हर प्रकार का पाप व्यवस्था का विरोध करता है (1 यूहन्ना 3:4) और इसके कारण मनुष्य पर परमेश्वर के न्याय और दण्ड की आज्ञा पड़ती है (गलातियों 3:10; याकूब 2:10)!

परमेश्वर की व्यवस्था मनुष्य द्वारा बनाई व्यवस्था के समान नहीं होती है, जहाँ सिर्फ 70% पास होना ही काफ़ी होता है। परमेश्वर की व्यवस्था के अनुसार, आप या तो 100% सही हैं या आप 100% असफल हैं। आपको पूरी से तरह से बचाया, क्षमा किया गया और परमेश्वर की सन्तान बनाया गया है। या आप पूरी तरह से भटक गए हैं, आपको अभी तक क्षमा नहीं किया गया, और आपको अनन्त काल के लिए दोषी ठहराया गया है।

यह स्पष्ट है कि पृथ्वी पर कोई भी व्यक्ति कभी भी व्यवस्था को पूरा करने के द्वारा सिद्धता को प्राप्त नहीं कर सकता, और न ही वह उद्धार की परीक्षा को पार कर सकता है। क्योंकि "सभी ने पाप किया है और परमेश्वर की महिमा (विशेषताएँ और स्वीकृति) से रहित हैं" (रोमियों 3:23)।

लेकिन यह भी स्पष्ट है कि जब तक विश्वास के द्वारा परमेश्वर किसी भी व्यक्ति पर अनुग्रह करके उसे यीशु मसीह में पूरी रीति से पवित्र (100%) और धर्मी (व्यवस्था की स्थिति में) नहीं बनाता, तब तक वह व्यक्ति बचाया

नहीं जा सकता (धर्मी घोषित नहीं किया जा सकता है)। "परन्तु उसी की ओर से तुम मसीह यीशु में हो, जो परमेश्वर की ओर से हमारे लिये ज्ञान ठहरा अर्थात् धर्म, और पवित्रता, और छुटकारा" (1 कुरिन्थियों 1:30)। "जो पाप से अज्ञात था, उसी को उसने हमारे लिये पाप ठहराया, कि हम उसमें होकर परमेश्वर की धार्मिकता बन जाएँ" (2 कुरिन्थियों 5:21)।

रोमियों 2:14-15; 3:19-21अ; 4:13-15; 6:14-15; 7:1,4,6; 8:3,4,7; 10:4-5; और गलातियों 2:19,21; 3:2,5,10-13; 5:18 में "व्यवस्था" शब्द का यही अर्थ है।

(2) **परमेश्वर के स्वभाव और इच्छा के लिए प्रकाशन के रूप में व्यवस्था।**

"व्यवस्था" परमेश्वर के स्वभाव और इच्छा की एक सिद्ध अभिव्यक्ति है। इसलिए, परमेश्वर के स्वभाव को व्यवस्था की आज्ञाओं के द्वारा दर्शाया गया है! बाइबल में नैतिक आज्ञाएँ, शिक्षाएँ, सिद्धान्त और उदाहरण हैं, संक्षेप में, सम्पूर्ण बाइबल इसमें निहित है। यह परमेश्वर के स्वभाव और इच्छा की एक सिद्ध अभिव्यक्ति है। परमेश्वर के स्वभाव को व्यवस्था की (नैतिक) आज्ञाओं के द्वारा दर्शाया गया है!

एक पूर्ण अर्थ में, व्यवस्था परमेश्वर के उद्धार, जीवनयापन के लिए कर्तव्य का पूर्ण नियम और निर्णय तथा दण्ड की आज्ञा के रूप में परमेश्वर के पूर्ण मानक है। व्यवस्था सिद्ध आज्ञाकारिता की अपेक्षा करती है (गलातियों 3:10; 5:3; याकूब 2:10; 1 यूहन्ना 3:4)।

पाप में गिरने से पहले, व्यवस्था के द्वारा अनन्त जीवन को प्राप्त किया जा सकता था (लैव्यव्यवस्था 18:5; रोमियों 7:10; 10:5; गलातियों 3:12)।

पाप में गिरने के बाद, व्यवस्था पापियों और अविश्वासियों को नहीं बचा सकती है, क्योंकि पापी और अविश्वासी लोग स्वयं को परमेश्वर की व्यवस्था के प्रति 100% समर्पित *नहीं करते* और *ना ही* वे स्वयं को परमेश्वर की व्यवस्था के प्रति 100% समर्पित *कर सकते है* (रोमियों 8:7-8)। यहाँ तक कि पाप में गिरने के बाद, विश्वासी जन (मसीही) पूरी तरह से व्यवस्था की अपेक्षाओं का पालन नहीं कर सकते (याकूब 2:10; 1 यूहन्ना 1:8,10), जबकि परमेश्वर की पवित्रता और धार्मिकता इसकी मांग करती है (लैव्यव्यवस्था 18:5)। परमेश्वर मानव इतिहास और संसार में किसी भी व्यक्ति का व्यवस्था को पूरा करने की कोशिश करने के द्वारा न्याय नहीं करेंगे (रोमियों 3:19-20,28; गलातियों 2:16)!

(3) **न्याय के रूप में व्यवस्था सभी के लिए अभिशाप है।**

पाप में गिरने से पहले उद्धार और दण्ड के मानक के रूप में "व्यवस्था" को परमेश्वर की अपेक्षा के रूप में आदम को दिया गया (उत्पत्ति 2:16-17)। इसे सभी लोगों के हृदयों में भी लिखा गया (रोमियों 2:14-15; 1:32) ताकि कोई भी व्यक्ति बहाना न बना सके (रोमियों 3:19)।

मूसा और इस्राएल के लोगों को लिखित रूप में व्यवस्था दी गई (लैव्यव्यवस्था 18:5; व्यवस्थाविवरण 4:1; 6:24; नहेम्याह 9:29; यहेजकेल 20:11,13,21; रोमियों 10:5)।

हालाँकि, पाप में गिरने के बाद मनुष्य ने अनन्त जीवन के अधिकार को खो दिया और व्यवस्था को बनाए रखने के द्वारा वह अनन्त जीवन को प्राप्त नहीं कर सकता। कोई भी व्यक्ति (मसीह के अलावा) व्यवस्था को बनाए नहीं रख सकता। व्यवस्था को बनाए रखने की कोशिश करना एक अभिशाप है, जिसमें से केवल यीशु मसीह ही किसी व्यक्ति को स्वतंत्र (बचा सकता है) कर सकता है (गलातियों 3:10-25)।

(4) **सम्पूर्ण पुराने नियम के प्रकाशन या वाचा के रूप में व्यवस्था।**

नए नियम के समय में यहूदियों के लिए, "व्यवस्था" सम्पूर्ण पुराना नियम थी, विशेष रूप से मूसा की पांच पुस्तकें। व्यवस्था परमेश्वर की पूरी तरह से धार्मिक और पवित्र माँगें या अपेक्षाएँ थीं जिन्हें नैतिक, औपचारिक (रीति) और इस्राएलियों की व्यवस्थाओं के रूप में व्यक्त किया गया था। यहूदी व्यवस्थापकों ने इन व्यवस्थाओं को 613 पारम्परिक व्याख्याओं के रूप में सिखाया।

- पुराने नियम के समय के दौरान नैतिक व्यवस्थाओं (दस आज्ञाओं) ने लोगों को यह सिखाया कि कैसे उन्हें परमेश्वर द्वारा बचाए गए लोगों के रूप में परमेश्वर और अपने पड़ोसियों से पवित्र और धार्मिकता के सम्बन्ध के साथ अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिए।
- पुराने नियम के समय के दौरान औपचारिक व्यवस्थाओं (पवित्र लोगों, पवित्र स्थानों, पवित्र समय और पवित्र कार्यों के सम्बन्ध में) ने लोगों को यह सिखाया कि कैसे उन्हें परमेश्वर के क़रीब पहुँचना, उसकी आराधना और सेवा करनी चाहिए।
- पुराने नियम के समय के दौरान लोगों के लिए बनाई गई व्यवस्थाओं (राजाओं और न्यायियों, दण्ड और क्षतिपूर्ति, युद्ध और विवाह, आदि के सम्बन्ध में व्यवस्था) ने यह सिखाया कि उन्हें अन्यजातियों के देशों के बीच परमेश्वर के धर्ममय राष्ट्र (इस्राएल) के रूप में कैसे कार्य करना चाहिए।

हालाँकि, यहूदियों ने इसे गलत तरीके से माना कि मूसा की व्यवस्था को बनाए रखने की कोशिश उन्हें बचा (उन्हें सही ठहरा) सकती है। लोगों को इस मान्यता से स्वतंत्र करने की आवश्यकता है कि व्यवस्था के काम उन्हें परमेश्वर के दृष्टिकोण में सही ठहरा सकते हैं। इसे "पुरानी वाचा या मूसा की व्यवस्था से छुटकारे" (और प्रत्येक वह व्यवस्था जो उद्धार पाने के लिए एक शर्त के रूप में है) के रूप में कहा जाता है। पुरानी वाचा या मूसा की व्यवस्था को "विधियों के लेख और उसके सहायक नियम, जो हमारे विरोध में था" (कुलुस्सियों 2:14) या "शब्द" कहा जाता है (2कुरिन्थियों 3:6) (रोमियों 7:6; गलातियों 3:10; 5:3; इब्रानियों 7:12,16,18-19,22; 8:5-13; 10:1-4)।

(5) **यहूदी शिक्षकों की कई व्याख्याओं और परम्पराओं के अनुसार व्यवस्था।**

नियमावली 11 के अध्याय 25 में "प्राचीनों की परम्परा" को "अन्धे व्यक्ति द्वारा अन्धे व्यक्ति की अगुवाई करने वाले दृष्टान्त" में देखें। यीशु मसीह और प्रेरितों ने उन व्याख्याओं, परम्पराओं और स्वनिर्मित बातों को अस्वीकार कर दिया, जो यहूदी शिक्षकों द्वारा बनाई व्यवस्था से सम्बन्धित थी (मत्ती 15:6-9; 23:4; प्रेरितों के काम 15:1,10; गलातियों 5:1-4)। धर्मगुरुओं द्वारा बनाई हुई सैकड़ों धार्मिक व्यवस्था परमेश्वर को प्रसन्न नहीं करती और न ही किसी को उसके पापों से बचा सकती!

(6) **आधुनिक धर्मगुरुओं द्वारा व्यवस्था की व्याख्या।**

अतीत में ऐसे लोग रहे हैं जिन्होंने सिखाया कि व्यवस्था के अनुसार विश्वासी की मृत्यु उसके उद्धार के लिए एक औपचारिक शर्त के रूप में है (रोमियों 7:4,6 में उनकी व्याख्या)। उनके अनुसार, पुराना नियम "शाब्दिक व्यवस्था" है, जिसे कोई भी बनाए नहीं रख सकता है और इसे नए नियम द्वारा बदल दिया गया है, जो कि "आत्मिक व्यवस्था" (सुसमाचार) है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति बनाए रख सकता है! यह "एक मसीह से ज्यादा महत्व रखने वाला सुसमाचार" बन गया (जिसे अस्वीकार किया जाना चाहिए) (गलातियों 1:6-9)! उनके अनुसार, इस आत्मिक व्यवस्था में विश्वास से ज़्यादा सुसमाचार के पालन को महत्व दिया गया। इसके कारण, वे मानते हैं कि एक व्यक्ति को न केवल यीशु मसीह पर विश्वास करने के द्वारा, बल्कि उसे नैतिक आज्ञाओं का पालन करने के द्वारा भी बचाया जा सकता है!

उनके सन्देश के अनुसार उद्धार पूरी तरह से विश्वास और विश्वासी के किये गए कार्यों पर निर्भर करता है! इस प्रकार, कुछ मसीही निम्नलिखित बातों को जोड़ कर उद्धार को प्राप्त करने की आवश्यकता बताते हैं!

- अपने वर्गों को जोड़ना (जो उनके अनुसार एकमात्र सच्ची कलीसिया है)
- एक विशेष तरीके से जल का बपतिस्मा लेना (जो उनके अनुसार एकमात्र सही बपतिस्मा है)
- अन्य भाषा में बोलकर आत्मा के बपतिस्मा लेने का प्रमाण देना
- एक विशेष पवित्र जीवन व्यतीत करना (जैसे कुछ खाद्य पदार्थों, कुछ गतिविधियों, और कुछ सम्बन्धों से परहेज़)

रोमियों को लिखी गई पत्री इन सभी धारणाओं को अस्वीकार करती है। लोगों को उनके द्वारा किये गए कार्यों द्वारा नहीं बचाया जाता है, लेकिन उन्हें इसलिए बचाया गया क्योंकि मसीह में होकर परमेश्वर ने विश्वासियों के स्थान पर विश्वासियों के लिए पूर्ण आवश्यक काम किया (इफिसियों 2:8-9 देखें)! हालाँकि व्यवस्था को बनाए रखने से कोई बच नहीं सकता, बचाए गए लोग परमेश्वर द्वारा दी गई नैतिक आज्ञाओं के अनुसार अपना जीवनयापन करके अपने उद्धार का आभार व्यक्त करते हैं। दस आज्ञाओं को कभी भी उद्धार को प्राप्त करने के साधन के रूप में नहीं दिया गया, बल्कि इसलिए दिया गया ताकि लोग एक दिशानिर्देश के रूप में परमेश्वर के अधीन होकर कृतज्ञता के साथ अपने जीवन को व्यतीत करें (निर्गमन 20:1-2 से तुलना करें)।

(7) **केवल यीशु मसीह द्वारा ही व्यवस्था को पूरा किया गया।**

यीशु मसीह के प्रथम आगमन (उनका जीवन, पीड़ा, मृत्यु और पुनरुत्थान) का उद्देश्य लोगों के उद्धार के लिए परमेश्वर की धार्मिक आवश्यकता को पूरा करना था (मत्ती 3:15; 5:17; यूहन्ना 4:34; 17:4; 19:30)।

- धार्मिक आवश्यकता के रूप में व्यवस्था। उसने पहले ही उद्धार के लिए परमेश्वर की पूर्ण आवश्यकता के रूप में व्यवस्था, उस नियम कि कैसे एक बचाए हुए व्यक्ति को अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए और अविश्वासियों के दण्ड के मानक को पूरा कर लिया।
- छाया के रूप में व्यवस्था। उसने पहले से ही सभी पुराने नियम की छाया (इब्रानियों 9:8-10; 10:1; कुलुस्सियों 2:17), सभी याजकीय (मूसा की) संस्थानों (औपचारिक व्यवस्था), मंदिर में होने वाली उपासना, पर्वों और उपवास के दिनों, खतनों, बलिदानों, भेंटों और दशमांशों, शुद्धता के नियमों, आदि को पूरा किया.. "इसलिए कि व्यवस्था तो मूसा के द्वारा दी गई, परन्तु अनुग्रह और सच्चाई (वास्तविकता) यीशु मसीह के द्वारा पहुँची" (यूहन्ना 1:17)।
- भविष्यवाणियों के रूप में व्यवस्था। उसने आने वाले (अपेक्षित) मसीहा के बारे में बताई गई पुराने नियम की सभी भविष्यवाणियों (नियमावली 3, परिशिष्ट 15 देखें) को पूरा किया।

संक्षेप में, यीशु मसीह ने सम्पूर्ण व्यवस्था को *पूरा किया* (मत्ती 5:17)!

अपनी मृत्यु और पुनरुत्थान के द्वारा, यीशु मसीह ने :

- व्यवस्था (और भविष्यद्ववाणियों) को पूरा किया (मत्ती 5:17)
- व्यवस्था को बदल दिया (इब्रानियों 7:12)
- व्यवस्था को अलग रखा (इब्रानियों 7:18-19)
- व्यवस्था को जीर्ण कर दिया (इब्रानियों 8:13)
- व्यवस्था के सभी नियमों को समाप्त कर दिया (कुलुस्सियों 2:14)
- व्यवस्थाओं और उनकी आज्ञाओं को मिटा दिया (इफिसियों 2:14-15)!

यीशु मसीह उन लोगों को छुड़ाने के लिए आया है जो पूर्व में व्यवस्था के अभिशाप (और गुलामी) के तहत दबे हुए थे, ताकि वे अनुग्रह और परमेश्वर की संतान होने का अधिकार प्राप्त कर सकें (गलातियों 3:13-14; 4:5)। संक्षेप में, यीशु मसीह लोगों को परमेश्वर की उस व्यवस्था से स्वतंत्र करने के लिए आया जिसे परमेश्वर के उद्धार की पूर्ण आवश्यकताओं (न्यायोचित स्वीकृति) और दण्ड के मानक के रूप में माना जाता है।

2 परमेश्वर की आत्मिक शिक्षाओं और नैतिक आज्ञाओं के रूप में व्यवस्था जो यह बताती है कि परमेश्वर के लोगों को कैसे अपना जीवनयापन करना चाहिए।

दिए गए बाइबल के गद्यांशों में, व्यवस्था मुख्य रूप से *न्याय (उद्धार) के लिए परमेश्वर की अपेक्षाओं का उल्लेख नहीं करती,* लेकिन *पवित्रता के लिए परमेश्वर की अपेक्षाओं,* अर्थात्, परमेश्वर के न्यायसंगत (बचाया) लोगों के रूप में जीवनयापन करने का उल्लेख करती है। व्यवस्था में बाइबल की शिक्षाओं का समावेश है, विशेषकर नैतिक आज्ञाओं का।

(1) पाप का ज्ञान देने वाले प्रकाश के रूप में व्यवस्था (इस प्रकार उद्धार की आवश्यकता को प्रगट करना)।

नैतिक व्यवस्था (उदाहरण के लिए, दस आज्ञाएँ) के द्वारा लोग यह जान पाते हैं कि पाप क्या है (रोमियों 7:7)।

- एक ओर नैतिक व्यवस्था से परमेश्वर की पवित्रता, धार्मिकता, भलाई और आत्मिक स्वभाव के विषय में पता चलता है।
- दूसरी ओर यह मनुष्य की अपवित्रता, अधर्म, बुराई और पापी या दुष्ट स्वभाव को प्रगट करती है (रोमियों 7:12,14)

इस प्रकार, नैतिक व्यवस्था किसी व्यक्ति को उसके पापों से उद्धार के लिए तैयार करती है। परमेश्वर के नैतिक और आत्मिक व्यवस्थाओं की तेजोमय और श्वेत स्पष्टता मनुष्य के नैतिक और आत्मिक अवगुणों के कालेपन का खुलासा करती है (गलातियों 3:19-25; 1 तीमुथियुस 1:8-11; इब्रानियों 8:10)!

(2) एक ऐसे साधन के रूप में व्यवस्था, जो जीवन के लिए पापी स्वभाव को उजागर करती है (और इस तरह से अवगुणों को बताता है)।

नैतिक व्यवस्था पवित्र, धर्मी, भली और आत्मिक है (रोमियों 7:12,14) और यह पाप का कारण नहीं हो सकती। मनुष्य का पापी स्वभाव पाप का कारण होता है। यह किसी भी व्यक्ति में पापपूर्ण इच्छा को उत्तेजित और उजागर करने के लिए नैतिक व्यवस्था का उपयोग एक साधन के रूप में करता है। जैसे ही कोई व्यक्ति नैतिक व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित करना आरम्भ करता है, वैसे ही उसका पापी स्वभाव उसके शरीर में एक सामर्थी उत्पीड़क और उसके विवेक में एक भयानक वास्तविकता बन जाता है (रोमियों 7:8-11)। पापी स्वभाव के कारण उसके भीतर मृत्यु का फल उप्तन्न होता है (रोमियों 7:5; की तुलना गलातियों 6:19-21 से करें)।

जितना अधिक कोई व्यक्ति नैतिक व्यवस्था को बनाए रखने की कोशिश करता है, उतना ही वह अपने कुल नैतिक और आत्मिक अवगुणों का अनुभव करता है (रोमियों 7:14-15 से तुलना करें)। इस प्रकार, व्यक्ति "अच्छे होने" की अपनी काल्पनिक स्थिति के लिए "मर जाता है", अपनी झूठी प्रतिभूतियों को खो देता है और अनन्त दण्ड की पीड़ा और खतरे की स्थिति में आ जाता है (रोमियों 7:9ब)।

(3) पवित्र और धार्मिक जीवनयापन के लिए परमेश्वर के मानक के रूप में व्यवस्था (एक बचाए गए व्यक्ति के रूप में कैसे जीवनयापन करें)।

हालाँकि विश्वासी अब "व्यवस्था के अधीन" नहीं, जो उद्धार के लिए परमेश्वर की परम अपेक्षा और दण्ड के लिए उसके परम मानक के रूप में है (रोमियों 6:14), उसे एक बचाए गए व्यक्ति (अर्थात्, नैतिक व्यवस्था) के रूप में जीवनयापन के लिए परमेश्वर के मानक से अलग नहीं किया गया है।

व्यवस्था के रूप में परमेश्वर का वचन। विश्वासी की यह इच्छा होती है कि वह "व्यवस्था" (बाइबल) में भली शिक्षाओं की ख़ोज करे, दिन-रात उन पर ध्यान लगाए रहे, उनका पालन करता रहे और अपने जीवन में शान्ति और स्थिरता पाये (भजन 119:18, 97,136,165)। परमेश्वर का वह वचन जिसका प्रचार किया और जिसे

सिखाया, सुना, पढ़ा, और जिसका पालन किया जाता है, उसे "सिद्ध व्यवस्था कहते हैं, जो स्वतंत्रता प्रदान करती है" (याकूब1:25)। बाइबल में नैतिक आज्ञाएँ, शिक्षाएँ, सिद्धान्त और उदाहरण, संक्षेप में, सम्पूर्ण बाइबल, परमेश्वर के स्वभाव और इच्छा की एक आदर्श अभिव्यक्ति है। इस प्रकार, व्यवस्था आज्ञाओं और शिक्षाओं में व्यक्त परमेश्वर का स्वभाव है! इसलिए व्यवस्था परमेश्वर की सन्तानों के रूप में रहने का सही तरीका है। व्यवस्था (बाइबल) के अनुसार जीवनयापन करना वास्तविक स्वतंत्रता का सही तरीका है।

दस आज्ञाओं के रूप में व्यवस्था। जब परमेश्वर ने अपने लोगों को बन्धुवाई से स्वतंत्र करने के लिए बचाया (छुड़ाया) था, तब ही उसने उन्हें दस आज्ञाएँ दीं (निर्गमन 20:1–17)। उसने इन नैतिक आज्ञाओं को उद्धार प्राप्ति की अपेक्षा के रूप में नहीं दिया। नहीं तो वह अपने लोगों को व्यवस्था के जुए के तहत पाप की बन्धुवाई में लाया होता।

उसने उन्हें उनकी उद्धार की स्थिति को बनाए रखने के लिए दस आज्ञाएँ दीं! परमेश्वर के नैतिक नियमों की सीमाओं के भीतर रहना ही स्वतंत्रता का अनुभव करने और एक ठोस रूप में स्वतंत्रता प्राप्त करने का एकमात्र तरीका है! परमेश्वर की नैतिक आज्ञाओं की सीमाओं के भीतर रहना परमेश्वर की लोगों के लिए अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने और अपनी स्वतंत्रता को व्यक्त करने का एकमात्र संभव तरीका है। नैतिक व्यवस्था लोगों को बन्धुवा बनाने या लोगों को बचाने (न्याय करने) का साधन नहीं है, बल्कि बचाए हुए और स्वतंत्र जीवनयापन करने का साधन है!

राज व्यवस्था के रूप में व्यवस्था। बाइबल के अनुसार "राज व्यवस्था" प्रेम है (याकूब 2:8)। "जो दूसरों से प्रेम रखता है, उसी ने व्यवस्था पूरी की है" (रोमियों 13:8) प्रेम व्यवस्था की पूर्णता है क्योंकि जो भी दस आज्ञाएँ नकारात्मक तरीके से व्यक्त करती हैं, उसे प्रेम एक सकारात्मक तरीके से व्यक्त करता है। प्रेम "तू यह न करना को..." "तू यह करना में..." बदल देता है (रोमियों 13:8–10)। व्यवस्था बताती है कि परमेश्वर, अपने पड़ोसी और स्वयं से किस प्रकार प्रेम करें (मरकुस 12:30–31; रोमियों 13:10; गलातियों 5:14; 6:2; याकूब 2:8) और परमेश्वर को उन कार्यों के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए जो उसने आपके के लिए पवित्र और धर्मी जीवनयापन किस प्रकार करें।

(4)**स्वतंत्रता (छुटकारे) के लिए एकमात्र सीमा के रूप में व्यवस्था।**

विश्वासियों को "उन लोगों के समान वचन बोलना और कार्य करना चाहिए जिनका न्याय स्वतंत्रता की व्यवस्था के अनुसार होगा" (यूनानी में : eleutheria, के विपरित douleia, दासता) (याकूब 2:12)। परमेश्वर की व्यवस्था हर प्रकार की बन्धुवाई से स्वतंत्र करती है। व्यवस्था और स्वतंत्रता अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं! परमेश्वर की व्यवस्था के बिना कोई वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है। परमेश्वर की व्यवस्था में बाइबल और परमेश्वर की नैतिक व्यवस्था शामिल हैं! परमेश्वर की व्यवस्था "सिद्ध" है (याकूब 1:25) क्योंकि व्यवस्था परमेश्वर के स्वभाव को आज्ञाओं में व्यक्त करती है और इसलिए भी क्योंकि व्यवस्था मनुष्य के स्वभाव को व्यक्त (नये जन्म) करने का सबसे अच्छा साधन है! परमेश्वर की नैतिक आज्ञाओं में व्यक्त की गई उसके स्वभाव के अनुसार जीवनयापन करने के बिना कोई वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है! मसीहियों को परमेश्वर की आज्ञाओं के अनुसार जीवनयापन करना चाहिए और परमेश्वर की आज्ञाओं के अनुसार ही उनका न्याय किया जाएगा।

अविश्वासियों को केवल "स्वतंत्रता" चाहिए। वे अपने माता–पिता, उनके धार्मिक समुदाय और उनके समाज द्वारा तैयार किए गए सभी नियमों से स्वतंत्र होना चाहते हैं ताकि वे जो कुछ भी करना पसन्द करते हैं उसे कर सकें जैसे, यौन–सम्बन्ध बनाना, नशीले पदार्थों का सेवन, धन का लालच, वैभव और ताक़त आदि की इच्छा करना। लेकिन इस तरह की सीमाओं से स्वतंत्रता या मुक्ति केवल इन सब प्रकार के पापों की ओर ले जाती है।

विश्वासियों का जन्म फिर से सत्य के वचन के द्वारा हुआ है (याकूब 1:18) और उनके हृदय और विवेक में परमेश्वर की व्यवस्था लिखी गई है (इब्रानियों 10:16)। विश्वासियों ने स्वेच्छा से स्वयं को परमेश्वर और बाइबल के परमेश्वर की व्यवस्था के अधीन किया है। वे परमेश्वर के नियमों का पालन करना चाहते हैं, कर सकते हैं और करेंगे भी। वे *इन आज्ञाओं की सीमाओं के भीतर* परमेश्वर और उसकी आज्ञाओं का पालन करके सबसे बड़ी स्वतंत्रता पाते हैं! मसीहियों के लिए, परमेश्वर की व्यवस्था से जुड़े रहे बिना कोई और वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है! आज्ञाकारिता वह तरीका है जिसमें एक मसीही परमेश्वर के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करता है। यीशु ने कहा, "जिसके पास मेरी आज्ञा है, और वह उन्हें मानता है, वही मुझसे प्रेम रखता है, और जो मुझसे प्रेम रखता है, उससे मेरा पिता प्रेम रखेगा, और मैं उससे प्रेम रखूँगा, और अपने आपको उस पर प्रगट करूँगा।" "यदि कोई मुझसे प्रेम रखे, तो वह मेरे वचन को मानेगा, और मेरा पिता उससे प्रेम रखेगा, और हम उसके पास आएँगे, और उसके साथ वास करेंगे" (यूहन्ना 14:21,23)। परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करके एक व्यक्ति वास्तव में स्वतंत्र हो जाता है (यूहन्ना 8:31-32,26; की तुलना प्रेरितों के काम 4:32 से करें)।

परमेश्वर की व्यवस्था का पालन न करना परमेश्वर के नियम के विरुद्ध बोलने, उसकी आलोचना करने और उसके नियम को "गलत" बताने के समान है। परमेश्वर के नियम का पालन न करने का अर्थ है कि वह व्यक्ति परमेश्वर को व्यवस्था देने वाले और न्यायाधीश के रूप में नहीं मानता (याकूब 4:11-12)। परमेश्वर, जो व्यवस्था देने वाला और न्यायाधीश है, वह "स्वतंत्रता की व्यवस्था के अनुसार" सभी लोगों का न्याय करेगा (याकूब 2:12), यानी बाइबल की शिक्षाओं और विशेष रूप से बाइबल में नैतिक व्यवस्था के अनुसार।

---

3 एक सिद्धान्त या कर्मों के रूप में व्यवस्था।

दिए गए बाइबल गद्यांश में, "व्यवस्था" शब्द का अर्थ है एक सिद्धान्त या कर्मों की व्यवस्था।

(1) कर्मों की व्यवस्था नियम (रोमियों 3:27)।

"कर्मों की व्यवस्था" वह सिद्धान्त है जिसकी किसी व्यक्ति के स्वयं के कर्मों या समर्पित प्रयासों को मूसा द्वारा दी गई व्यवस्था का पालन करने के लिए आवश्यकता होती है जिसके द्वारा उसका न्याय (उद्धार) हो सके। इस प्रकार के सिद्धान्त के द्वारा घमण्ड उत्पन्न होता है (इफिसियों 2:8-9 से तुलना करें)।

(2) विश्वास की व्यवस्था (रोमियों 3:27)।

"विश्वास की व्यवस्था" वह सिद्धान्त है जो यीशु मसीह पर विश्वास करने के लिए और उसके उद्धार के पूर्ण कार्य के रूप में हमारे न्याय (उद्धार) के लिए आवश्यक है। केवल इस प्रकार का सिद्धान्त हमें नम्र करता है।

(3) पाप की व्यवस्था (रोमियों 7:21,23 ac,25 b)।

"पाप की व्यवस्था" मनुष्य के भीतर पाए जाने वाले पाप, पापी या दुष्ट स्वभाव को दर्शाती है जो कि उसमें एक व्यवस्था या उसके हठी या न मानने वाले सिद्धान्त के रूप में कार्य करती है। यह एक ऐसी शक्ति है जो विश्वासियों को विवश करने, उस पर हावी होने या उसे नियंत्रित करने की इच्छा रखती है। पौलुस यह नहीं कहता कि मसीही जन सदैव पाप करता रहता है, लेकिन वह कहता है कि विश्वासियों में पापी स्वभाव एक ऐसी शक्ति है जिससे वह स्वयं को स्वतंत्र नहीं कर सकता।

समय और पापी स्वभाव फिर से मनुष्य की इच्छा को चुनौतियाँ देकर उसका विरोध करते हैं और विश्वासियों की भली इच्छाओं को बुराई में बदल देते हैं। जब भी विश्वासी भलाई करने की इच्छा करता है, तब बुराई निश्चित सोती नहीं रहती है, लेकिन उसे नष्ट करने के उद्देश्य से उसके चारों ओर फाड़ खाने की खोज में लगी रहती है (1 पतरस 5:8 से तुलना करें)। विश्वासियों के "द्वार पर पाप छिपा रहता है" ताकि उस पर अपनी

प्रभुता कर सके (उत्पत्ति 4:7 से तुलना करें) और उसके भले कार्यों को बुराई में बदल सके। पाप की व्यवस्था (अर्थात् पापी स्वभाव) विशेष रूप से उसके शरीर के अंगों में सक्रिय रहती है (रोमियों 6:13,19; 7:14,17,20)। जब तक वह अन्त में अपनी "मृत्यु की देह" से स्वतंत्र नहीं हो जाता, तब तक पाप की व्यवस्था उसके जीवन में एक वास्तविकता बनी रहती है (रोमियों 7:24; 1 कुरिन्थियों 15:54-57), अर्थात्, वर्तमान स्थिति में अपनी शारीरिक देह से स्वतंत्र होना जो कि दुष्ट स्वभाव और मृत्यु के अधीन है।

गैर-मसीही पापी स्वभाव (स्वयं के पुराने या पापी देह, रोमियों 6:6) के पूर्ण अधिकार और उसकी दासता की शक्ति से स्वतंत्र नहीं हैं। और यद्यपि विश्वासी जब पापी स्वभाव के हावी और दासता की शक्ति से स्वतंत्र हो जाते हैं, तब भी पापी स्वभाव उनके जीवन में एक वर्तमान और प्रभावी शक्ति बना रहता है (रोमियों 6:7; 7:18; 8:2)। पापी स्वभाव, विश्वासी के भीतर पाए जाने वाले पवित्र आत्मा के साथ लगातार संघर्ष करता रहता है (रोमियों 6:13,19; गलातियों 5:16-23)। सच्चे विश्वासी, बार-बार, पवित्र आत्मा द्वारा नियंत्रित किए जाने का चयन करते हैं, न कि उनके पापी स्वभावों द्वारा (रोमियों 8:9,13)। सच्चे विश्वासी, बार-बार, पापी दुनिया के अनुरूप होते हैं और मसीह की समानता में परिवर्तित होने का चयन करते हैं (रोमियो 12:1-2; कुलुस्सियों 3:10)।

(4) **बुद्धि की व्यवस्था (रोमियों 7:23ब)।**

"बुद्धि की व्यवस्था" विश्वासी का पुनः उत्पन्न स्वभाव है (विश्वासी का वास्तविक आंतरिक अस्तित्व या स्वभाव) (रोमियों 7:22) जो एक अन्य व्यवस्था या शक्ति के रूप में कार्य करता है और जो विश्वासी जन के साथ समन्वय, प्रभुत्व या नियंत्रण की इच्छा रखता है। इसे दूसरे तरीके से देखा जाए तो, "बुद्धि की व्यवस्था" विश्वासी जन में रहने वाली पवित्र आत्मा है। समय और फिर से बड़े दृढ़ संकल्प के साथ बुद्धि की व्यवस्था वह करना चाहती है जो भला है, अर्थात्, परमेश्वर की नैतिक आज्ञाओं (रोमियों 7:16,22,26) और "उसकी बातों और उपदेशों के सांचों का पालन करना" (Greek: tupos didachés) जिन्हें मसीहियों को सौंपा गया था (रोमियों 6:17)।

(5) **जीवन की आत्मा की व्यवस्था (रोमियों 8:2)।**

"जीवन की आत्मा की व्यवस्था" पवित्र आत्मा है जो एक व्यवस्था या शक्ति के रूप में कार्य करता है, जो विश्वासी के जीवन के सभी पहलुओं को नया बनाकर, उसकी अगुवाई और उसे नियंत्रित करता है।

(6) **पाप और मृत्यु की व्यवस्था (रोमियों 8:2)।**

"पाप और मृत्यु की व्यवस्था" रोमियों 7:21,23 ac, 25b में पाई जाने वाली "पाप की व्यवस्था" के समान है।

(7) **धार्मिकता की व्यवस्था (रोमियों 9:31)।**

"धार्मिकता की व्यवस्था" परमेश्वर के सामने न्याय और धार्मिकता को प्राप्त करने के विषय में है। एक ओर, यह विषय यहूदियों के बीच अधिक महत्व रखता था। उन्होंने व्यवस्था के कार्यों को करके परमेश्वर के सामने न्याय किया। फिर भी, वे न्याय प्राप्त करने में विफल रहे। यहूदियों ने कभी भी व्यवस्था का पालन करके या नैतिक, औपचारिक और इस्राएलियों की व्यवस्थाओं का पालन करके परमेश्वर की धार्मिकता को प्राप्त नहीं किया।

दूसरी ओर, अन्यजातियों में यह धार्मिकता महत्वपूर्ण नहीं थी। हालाँकि अन्यजातियों की नैतिक विषयों में दिलचस्पी थी, लेकिन उन्होंने कभी भी परमेश्वर द्वारा ठहराई गयी न्याय की बातों का पालन नहीं किया। फिर भी, अन्यजातियों ने यीशु मसीह में विश्वास करके और उद्धार के उसके पूर्ण कार्यों के द्वारा परमेश्वर की धार्मिकता को प्राप्त किया।

(8)**ऐसी बातों के विरोध में कोई व्यवस्था नहीं है (गलातियों 5:23)।**

परमेश्वर ने अपने पवित्र आत्मा के माध्यम से विश्वासियों पर जो प्रभाव डाला, इसके विरोध में कोई व्यवस्था नहीं है। जबकि पापी स्वभावों के कार्यों के विरोध में व्यवस्था बनाई गयी है (गलातियों 5:19-21), आत्मा के

फल के विरोध में कोई व्यवस्था नहीं है! इसके द्वारा आत्मा के अनुसार जीवन को व्यतीत करने और आत्मा के फलों से भरे रहने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए!
